Vol. 6, Issue. 1, (January 2017) pp. 52-55 Sangeet Galaxy
ISSN: 2319-9695

संगीत की संस्थागत शिक्षण पद्धति : एक विश्लेष्णात्मक अध्ययन

अलका भदौरिया
कानपुर, उत्तर प्रदेश
Email: singhalka.1110@gmail.com

सारांश

भावों की अभिव्यक्ति का सर्वाधिक सशक्त माध्यम है संगीत। हृदयगत भावों को व्यक्त करने में जब शब्द असमर्थ हो जाते हैं तब संगीत रूपी साधन से हम अपने भावों को अभिव्यक्त करते हैं। संगीत अर्थात् गायन, वादन तथा नृत्य की त्रिवेणी में सराबोर होकर प्रत्येक व्यक्ति के हृदय को आनन्दानुभूति होती है। किसी भी कार्य को सफलतापूर्वक करने के लिए सर्वप्रथम एक योजना बनाई जाती है। सफलतापूर्वक शिक्षा प्रदान करने हेतु भी हम एक योजना बनाते हैं। इसी योजना को हम शिक्षण–पद्धति के रूप में परिभाषित करते हैं।

संगीत शिक्षा प्रदान करने हेतु प्राचीन काल में गुरू–शिष्य परम्परा अपनाई जाती थी। इस परम्परा के अन्तर्गत शिष्य गुरूकुल में रहकर ज्ञान प्राप्त करते थे। वर्तमान समय में संस्थागत शिक्षण–पद्धति अपनाई जाती है। इसके अन्तर्गत शिष्य एक निश्चित शिक्षण–संस्था में जाकर ज्ञान प्राप्त करते हैं। नवीन संगीत शिक्षण–पद्धति यद्यपि एक बहुआयामी पद्धति है। इसमें छात्रों को विविध घरानों की गायन, वादन शैलियों का ज्ञान प्रदान किया जाता है तथापि इसमें कुछ विसंगतियां है। इसमें चक्रावधि निश्चित होने से अभ्यास का क्रम बीच में तोड़ना पड़ता है। इस पद्धति में गुरूओं द्वारा कला–प्रदर्शन ज्यादा नहीं किया जाता, साथ ही साथ आंचलिक संगीत, चित्रपट संगीत, कार्यशालाओं का आयोजन एवं पाठ्यक्रम में विविधता आदि की भी संस्थागत पद्धति में उपेक्षा की गई है जिस कारण छात्रों के सांगीतिक ज्ञानवर्द्धन का मार्ग अवरूद्ध हो जाता है। अतः छात्रों में संगीत के प्रति प्रेम जाग्रत करने हेतु तथा समाज को योग्य संगीतज्ञ प्रदान करने हेतु नवीन संगीत शिक्षण पद्धति के उपरोक्त वर्णित स्याह पहलुओं को समाप्त करना अत्यावश्यक है।

मुख्य शब्द :– परम्परा, संस्थागत, बहुआयामी, शैली , स्याह।

"गीतम् वाद्यम् तथा नृत्यम् त्रयं संगीतं मुच्यते।।" (संगीत रत्नाकर) अर्थात् गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों कलाएँ मिलकर संगीत कहलाती हैं। संगीत वास्तव में एक गुरूमुखी कला है जो पूर्णतः अभ्यासाधारित है। संगीत जीवन को, आत्मा को, चरित्र को एक सही दशा व दिशा की तरफ ले जाने का माध्यम है। प्लेटो ने कहा है, "संगीत के माध्यम से आत्मा लय सीखती है। संगीत चरित्र बनाता है।"

संगीत के सन्दर्भ में यदि हम नवीन शिक्षण पद्धति का विश्लेषण करना चाहें तो सर्वप्रथम हमें यह ज्ञात होना आवश्यक है कि संगीत शिक्षण हेतु प्राचीनकाल में क्या पद्धति अपनाई गई थी तथा वर्तमान काल में कौन सी पद्धति प्रचलित है तथा नवीन शिक्षण पद्धति प्राचीन शिक्षण पद्धति से किस प्रकार भिन्न है। तदुपरान्त ही हम यह निश्चित करने में सक्षम हो सकेंगे कि हमारी नवीन शिक्षण पद्धति छात्रों के सांगीतिक विकास में सफल है अथवा असफल।

प्राचीन संगीत शिक्षण पद्धति :–

प्राचीनकाल में शिक्षा प्रदान करने हेतु गुरू–शिष्य परम्परा अपनाई गई थी। उस काल में गुरू को ईश्वर तुल्य स्वीकारा गया था। कहा भी गया है –

गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णु गुरूर्देवो महेश्वरः।
गुरूसर्क्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरूवे नमः।।

उपनिषद काल में भी इसी परिपाटी का अनुगमन किया गया। 'उपनिषद' शब्द का यदि हम शाब्दिक अर्थ देंखें तो उपनिषद शब्द का अर्थ है "उप" अर्थात् समीप "नि" अर्थात् नीचे तथा "षद्" अर्थात् बैठकर। अतः उपनिषद शब्द का अर्थ हुआ नीचे समीप बैठकर ज्ञान प्राप्त करना।

गुरू–शिष्य परम्परा के अन्तर्गत शिष्य अपने गुरू के सानिध्य में रहकर अपना जीवन व्यतीत करते तथा ज्ञानार्जन करते थे तो वहीं दूसरी ओर गुरू भी शिष्य को सन्तानवत् प्रेम करते हुए ज्ञान प्रदान करते थे। गुरू–शिष्य को मात्र बौद्धिक ज्ञान ही प्रदान नहीं करते थे वरन् वह शिष्य के सर्वांगींण विकास की ओर भी ध्यान देते थे।

संस्थागत संगीत शिक्षण पद्धति :–

वर्तमान समय में शिक्षा प्रदान करने हेतु संस्थागत शिक्षण पद्धति अपनाई गई है। इस पद्धति के अन्तर्गत शिष्य शिक्षण–संस्थान में जाकर कुछ निश्चित अवधि वहाँ व्यतीत कर, वहाँ उपस्थित योग्य शिक्षकों से विविध विषयों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। अब ज्वलन्त प्रश्न यह है कि यह शिक्षण पद्धति संगीत सीखने के लिए किस प्रकार तथा कितनी उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

संस्थागत संगीत शिक्षण पद्धति : आलोचनात्मक विश्लेषण

किसी भी प्रकरण का आलोचनात्मक विश्लेषण करने हेतु हमें सर्वप्रथम प्रस्तुत प्रकरण के विविध पक्षों का ज्ञान होना अत्यावश्यक है तदुपरांत ही हम उसका स्पष्ट, क्रमबद्ध विश्लेषण कर निष्पक्ष निष्कर्ष प्राप्त कर सकते हैं।

सकारात्मक पक्ष :–

वर्तमान समय में प्रचलित संस्थागत संगीत शिक्षण पद्धति में अनेकों सकारात्मक पक्ष निहित है जिनमें से सर्वोपरि है इस पद्धति का बहुआयामी होना अर्थात् प्रचलित पद्धति के अन्तर्गत शिक्षक छात्र को न सिर्फ एक

विशेष घराने की गायन/वादन शैली सिखाता है वरन् वह छात्र को विविध घरानों की विशेषताओं से परिचित भी कराता है।

वर्तमान शिक्षण–पद्धति परीक्षाधारित है। इसके अन्तर्गत प्रयोगात्मक परीक्षाओं का भी आयोजन किया जाता है। प्रयोगात्मक परीक्षाओं हेतु परीक्षक अन्य विश्वविद्यालयों से बुलाये जाते हैं जिससे मूल्यांकन पूर्णतः निष्पक्ष हो सके। इस प्रकार लिखित एवं प्रयोगात्मक परीक्षाओं के उपरान्त प्राप्त परिणामों से यह ज्ञात किया जा सकता है कि छात्र ने क्या, कितना तथा किस रूप में ज्ञान प्राप्त किया। तदुपरान्त उसी आधार पर गुरूओं द्वारा छात्रों को उचित मार्गदर्शन प्रदान किया जाता है।

नकारात्मक पक्षः–

वर्तमान प्रचलित पद्धति के अन्तर्गत गुरू–शिष्य परम्परा की पूर्णतः अवहेलना कर दी गयी है। गुरू–शिष्य परम्परा, जो कि संगीत शिक्षा का आधार मानी जाती है, को उपेक्षित करने से छात्रों मे एक घराना विशेष की बारीकियों को समझने की क्षमता कम हो गई है। इस पद्धति के अन्तर्गत संगीत शिक्षण ने पूर्णतः एक व्यावसायिक रूप ले लिया है। वर्तमान में गुरू–शिष्य के सम्बन्ध आत्मीय न होकर व्यावसायिक हो गये हैं।

वर्तमान समय में विद्यालयों, महाविद्यालयों में विविध विषयों का ज्ञान प्रदान करने हेतु चक्र निर्धारित किए जाते हैं यदि संगीत शिक्षण के परिप्रेक्ष्य में हम चक्राधारित प्रणाली का मूल्यांकन करें तो पायेंगे कि प्रयोगात्मक विषयों का ज्ञान प्रदान करने हेतु यह प्रणाली पूर्णतः अनुपयुक्त है। संगीत अभ्यासाधारित कला है। इसे समय की सीमाओं में बाँधा नहीं जा सकता। रागाध्ययन/तालाध्ययन करते समय यदि राग के मध्य में ही चक्र समाप्त हो जाये तो अभ्यास बीच में ही रोकना पड़ता है एवम् दूसरे दिन पुनः प्रारम्भ से अभ्यास शुरू करना पड़ता है। इस स्थिति से बचने के लिए गुरू शीघ्रातिशीघ्र अध्यापन कार्य करना चाहते हैं तथा छात्र भी यथाशीघ्र रागाध्ययन करना चाहते हैं परन्तु दुर्भाग्य यह है कि इस शीघ्राभ्यास में ज्ञान की गुणवत्ता कुप्रभावित हो जाती है।

संगीत एक व्यावहारिक कला है। संगीत का कितना ज्ञान छात्र ने प्राप्त किया यह मात्र प्रयोगात्मक परीक्षाओं से ही ज्ञात किया जा सकता है, परन्तु वर्तमान पद्धति में प्रयोगात्मक परीक्षाओं की अपेक्षा लिखित परीक्षाओं पर अधिक जोर दिया जाता है। यह पक्ष वर्तमान संगीत शिक्षण पद्धति का सर्वाधिक स्याह पक्ष है।

संस्थागत पद्धति में पाठ्यक्रम सत्र प्रारम्भ होने से पूर्व ही निर्धारित कर दिया जाता है एवं निर्धारित पाठ्यक्रम सभी छात्रों को पढ़ना होता है जोकि पूर्णतः अनुपयुक्त हैं। पाठ्यक्रम का निर्धारण छात्र योग्यता तथा सामाजिक वातावरण के अनुसार किया जाना चाहिए क्योंकि वास्तव में पाठ्यक्रम छात्र–विकास हेतु होता है तथा गुरूओं का कर्तव्य छात्रों में ज्ञानार्जन के प्रति प्रेम जागृत करना होना चाहिए।

ब्रिटिश जर्नल ऑफ एजुकेशन 1993 के अनुसार, 1992 में एक प्रश्नावली 78 सैकेण्डरी स्कूलों के संगीत अध्यापकों को दी गई। इनमें से 65 स्कूलों के अध्यापकों ने कहा कि संगीत सीखने में छात्राएँ आगे हैं जबकि 13 ने कहा कि छात्र–छात्राएँ समान योग्यता रखते हैं। समस्त अध्यापक इस तथ्य पर एकमत थे

कि जहाँ छात्राएँ प्राचीन परम्पराओं का अध्ययन, अनुगमन करती हैं तो वहीं दूसरी ओर छात्र नवीन खोज एवं अविष्कार करने में संलग्न रहते हैं। अतः उपरोक्त सर्वेक्षण से स्पष्ट हो जाता है कि हमें पाठ्यक्रम निर्धारित करते समय छात्र–योग्यता, लिंग, सामाजिक परिवेश, छात्र आवश्यकता आदि को पूर्णतः दृष्टिगत रखना चाहिए परन्तु दुर्भाग्यवश हमारी नवीन संगीत शिक्षण पद्धति में उपरोक्त समस्त बिन्दुओं की पूर्णतः उपेक्षा कर दी गई है। पाठ्यक्रम में यद्यपि शास्त्रीय संगीत का ज्ञान निहित होना चाहिए तथापि इसमें लोक अथवा आंचलिक संगीत तथा चित्रपट संगीत को भी उचित स्थान दिया जाना चाहिए।

निष्कर्ष :–

उपरोक्त वर्णित दोनों (सकारात्मक तथा नकारात्मक) पक्षों के अध्ययनोपरांत यह कहा जा सकता है कि यद्यपि संस्थागत संगीत शिक्षण पद्धति छात्रों के पूर्ण विकास हेतु कार्यशील है तथापि अभी इस पद्धति में अनेकों सुधार अपेक्षित हैं। यह पद्धति सामान्य अध्ययन तथा सैद्धान्तिक विषयों के अध्ययन के लिए तो उपयुक्त हो सकती है परन्तु संगीत की साधना हेतु इस पद्धति में कुछ परिवर्तन करने होंगे यथा–चक्रावधि का विस्तारण, गुरूओं द्वारा कला–प्रदर्शन, कार्यशालाओं का आयोजन, छात्रयोग्यतानुसार पाठ्यक्रम, आंचलिक तथा प्रचलित संगीत का पाठ्यक्रम में उचित स्थान आदि। यदि हम उपरोक्त वर्णित सुधारों को नवीन संगीत शिक्षण पद्धति में समाहित कर लें तो प्राप्त नवीन संशोधित शिक्षण पद्धति निश्चित ही छात्र–विकास में सहायक होकर समाज को नवीन संगीतज्ञ प्रदान कर सकेगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची –

1. Dhawan M.L., Philosophy of Education (2005), Gyan Publishing House, New Delhi.
2. Lock, John., Some Thought Concerning Education (1693), A.& J.Churchill Publication, London.
3. Massey Reginald -The Music of India (1996), Abhinav Publication, New Delhi.
4. Mehta R. C. – Indian Classical Music and Gharana Tradition (2011), Read worthy Publication Pvt. Ltd. New Delhi.
5. British Journal of Education (1993)
6 जगदीश नारायन पाठक – संगीत निबन्धमाला (1963), प्रयाग संगीत समिति, इलाहाबाद
7. संगीत पत्रिका (जनवरी, 1988)